डार्विन, मेंडिलेव, मनु और नागार्जुन में इतिहास का विवेक

साल 2023 से स्कूलों की जीव विज्ञान की टेक्स्ट बुक्स में से डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त और रसायन विज्ञान के आधार 'पीरियोडिक टेबल' को हटा दिया गया है। 'पीरियोडिक टेबल' एक तरह से केमिकल एलिमेंट्स को दिखाने की एक ऐसी पद्धति है जिसमें इनके क्रमशः खोज लिए जाने के साथ-साथ प्रत्येक तत्व के परमाणु के भार और नाभिक में कुछ खास किस्म के परमाणुओं (न्यूट्रॉंस) की संख्या का जिक्र होता है। इस संख्या से ही इनके भौतिक और रासायनिक गुणों की जाहिरात होती हैं। अभी तक 118 की संख्या में तत्वों की खोज हो चुकी है। केमिस्ट्री को समझने के लिए पदार्थ की आधारभूत संरचना को समझना जरूरी होता है। एप्लाइड और इंडस्ट्रियल रासायनिकी में इस संरचना को जाने बिना कोई काम संभव नहीं होता। हमारे आदि रसायनज्ञ आचार्य नागार्जुन या हमारे प्राचीन औषद्धि निर्माण विज्ञान (एंशिएंट इंडियन फार्माकॉलॉजी, फार्माकोग्नोसी, फार्माको-काइनेटिक्स आदि), के समय तक रसायनिकी में मॉडर्न या अधिक उन्नत पद्धति का विकास नहीं हुआ था। अभी तो सिंथेटिक केमिस्ट्री में ही उच्च स्तर का विकास हो चुका है। आधुनिक रसायनिकी को समझने के लिए आधारभूत ज्ञान (फाउंडेशनल नॉलेज) का होना तो अत्यावश्यक है। छात्र अगर पीरिओडिक टेबल को स्पेटियल और विज़्युएल मेथड से नहीं देखेंगे तो वे सीखेंगे कैसे? सिर्फ श्रवण या प्राचीन भारतीय रासायनिकी के पढे जाने से तो यह होगा नहीं!

डार्विन और मेंडिलेव वाले प्रसंग से पहले एक और 'दुर्घटना' हो चुकी है। भारत में विज्ञान के क्षेत्र में भिन्न प्रकार का काम करने वाले अनेक संस्थान वैज्ञानिकों को उनके उत्कृष्ट कार्य, शोध संरचना और खोज, अध्ययन आदि के लिए जो पुरस्कार देते रहे हैं उनमें से 300 नामित पुरस्कारों को भारत सरकार ने एक समीक्षा के बाद रद्द कर दिया और कहा कि इनका पुनर्गठन किया जाएगा। इसी साल कुछ रोज़ पहले एक आदेश जारी करके 'विज्ञान प्रसार' जैसी महत्वपूर्ण संस्था को 31 अक्तूबर 2023 तक शटर डाउन करने का हुक्म हुआ है। यह संस्था सन 1989 से देश में लोकरुचि शैली में विज्ञान के सभी विषयों के बारे सम्प्रेषण, प्रकाशन और प्रसारण का काम बाखूबी करती रही है।

इस तरह की घनाओं की वजह से सोचने को बाध्य होना होना पड़ता है कि शीर्ष राजनैतिक नेतृत्व के स्तर पर अचानक हम विज्ञान विरोधी और पश्चिम के वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित नव-विज्ञान के थियूरीज़ के प्रति कहीं असहिष्णु तो नहीं हो गए हैं? क्या ऐसे निर्णय भारत में विज्ञान और इंजीनीयरिंग की सैद्धांतिकी, प्रतिपादन, इस्तेमाल, शिक्षण आदि को बदलने में कामयाब हो पाएंगे? वैज्ञानिक विचारों के जन्म, प्रतिपादन, तजुर्बे और प्रॉडक्ट निर्माण का लंबा क्रमिक इतिहास रहा है। उस इतिहास को कैसे मिटाया जा सकता है। यह मनुष्य समाज की साझ बौद्धिक विरासत है और इस पर नेशनलिटीज़ की छाप नहीं होती है। यह सर्व-सुलभ और ग्लोबल है। वैज्ञानिक प्रवृत्तियां किसी समाज विशेष की विशिष्ट बौद्धिक पूंजी नहीं होती। वैज्ञानिक क्षेत्र में नए ज्ञान के सृजन का श्रेय देने की पद्धति किसी पॉलिटिकल निर्णय से प्रभावित नहीं होती बल्कि यह यह एक गैर-राजनैतिक कर्म है। वैज्ञानिक संस्थानों की स्थापना के पीछे लंबी कहानियां होती हैं, लोगों की मेहनत और कुर्बानी होती है, सरकारी खजाने से लोकहित में बहुत अधिक पैसा खर्च कर दिया गया होता है। भारत में आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में काम करने का दौर प्रेसीडेंसीज़ में स्थापित विश्व-विद्यालयों और मेडिकल कॉलेजों से हुआ था सन 1880 के आसपास ही शुरू हुआ था। फिर इसे कुछ साइन्स सोसाइटीज़, इंडियन रिसर्च फ़ंड एसोशिएशन और बेंगलुरु में लेडी टाटा के प्रयासों से स्थापित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स द्वारा अपनाया गया। लेकिन विज्ञान को लोक-कल्याण और टेक्नालजी में बदलने से पहले विज्ञान शिक्षण की पद्धति और परंपरा को ठीक रखना होता है। फॉर्मल शिक्षा में आठवीं क्लास से लेकर पोस्ट-ग्रेजुएशन तक की शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्धारण से ही तो यह आती है। भारत की नई शिक्षा नीति को लागू करने से पहले इस पर व्यापक विमर्श हुआ है, लेकिन भारत के सभी प्रान्तों में स्कूली और उच्चतर शिक्षा के विभागों द्वारा संयोजित की गई विमर्श की रिपोर्ट्स देखी जायें तो भारत की सांस्कृतिक विविधता से बनी सोच की की छाप इनमें नज़र आएगी। प्रत्येक प्रांत में स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयी स्तर तक इस विमर्श को प्रभावित करने वाले विशेषज्ञों की सिफ़ारिशें सैद्धान्तिक रूप से बेशक मेल खाती होंगी लेकिन लागू करने की पद्धति में फर्क नज़र आयेगा ही। सिलेबस

को छोटा करने के लिए एनसीईआरटी ने जो आदेश जारी किए हैं उनके अध्ययन से प्रत्यक्ष तो यही है कि स्कूली बच्चों पर पढ़ाई का बोझ हल्का करने के इरादे से डार्विन और मेंडिलेव के विचारों और कार्य के कुछ हिस्से 'एडिट' नहीं बल्कि 'डिलीट' किए गए हैं। भारत में बच्चों को विज्ञान के किसी भी विषय के इतिहास से वाकिफ नहीं कराया जाता जबकि बायोलॉजी और केमिस्ट्री का नहीं बल्कि फिजिक्स के अलावा मैथ्स और सभी विषयों का इतिहास मौजूद है। इन विषयों का मॉडर्न इतिहास हमें नहीं बल्कि यूरोपियन्स ने लिखा है और यह अङ्ग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन और स्पेनिश तक में उपलब्ध है। मेरे पास अधिकतर विषयों के इतिहास के सभी खंड मौजूद हैं और इन्हें पढ़ने से फिजिक्स हो या केमिस्ट्री, सभी अच्छे से समझ आते हैं। स्कूली मास्टरों को यह तक मालूम नहीं हिस्ट्री ऑफ लाइट, क्वान्टम फिजिक्स और एस्ट्रॉनॉमी में क्या अंतरंगता है। तब इनके लिए पीरियोडिक टेबल या क्रमिक विकासवाद के डार्विन के विचार को हटाने से कोई खास फर्क नहीं पड़ने वाला। मेरा अनुभव यह भी कहता है कि कॉलेज स्तर पर बीएससी (फ़ाइनल) के स्टूडेंट्स को भी पिरियोडिक टेबल की पूरी समझ नहीं होती और एमएससी (लाइफ-साइन्स) मे स्टूडेंट्स में से अधिकतर ने कभी 'ऑरिजिन ऑफ स्पीसीज़' को पोस्ट-ग्रेज्युएशन के बाद भी न पढ़ा होगा, डार्विन द्वारा 'बीगल' जहाज में की गई यात्रा के जिन विवरणों को उसने सन 1882 में अपनी पुस्तक 'अ नेचुरलिस्ट्स वाएज -जर्नल ऑफ रिसर्चेज इनटू द नेचुरल हिस्ट्री एंड जियोलौजी ऑफ द कंट्रीज़ विजिटिड.....राउंड द वर्ल्ड' में प्रकाशित किया उसकी तो बात ही छोड़िए। मुझे भी मेरे टीचर्स ने इनके बारे में कभी नहीं बताया था। इन सबकी जरूरत छात्र जीवन के बाद विज्ञान के क्षेत्र में विशेष प्रोफेशन अपनाने के दौरान ही नहीं बल्कि उच्च स्तर के ऐसे इम्तिहानों में सामान्य ज्ञान के पर्चों में दिये गए सवालों के जवाब देने के लिए भी रहती है जिन्हें आईएएस या प्रोविन्शिएल सिविल सर्विस की परीक्षा देनी है।

स्कूली सिलेबस में कान्त-छांट की बारंबारता के अगर वित्तीय पक्ष को नज़रअंदाज़ किया जाये तो भी वृहत दृष्टि से मूल्य और ज्ञान मीमांसा के दर्शन के अंतर्गत शिक्षा जगत में एक ऐसे माहौल के निर्माण में राजनैतिक सक्रियता के क्या माने हो सकते हैं जिसमें भविष्य में हम अपने नॉन-स्ट्रेटेजिक दिखने

वाले संस्थानों को कुर्बानी देने के लिए बाध्य करते रहते हैं। कहा गया है कि विज्ञान पढ़ने वाले छात्रों के मन पर बोझ डालने वाली विषयगत जानकारी को हटाना जरूरी है और नयी शिक्षा नीति के अनुसार इन्हें 'क्रिटिकल थिंकिंग' के तरफ ले जाना जरूरी है। सिलेबस का कंटेंट खुद में क्रिटिकल थिंकिंग की प्रक्रिया का उरप्रेरक नहीं हैं, बल्कि प्रेरणा का स्रोत है इतिहास और वह टीचर जो इसमें वाकिफीयत रखने वाला हो। तब देशभर में स्थापित किए गए 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स एजुकेशन एंड रिसर्च' जैसे संस्थानों की क्या भूमिका रह जाएगी? ऐसे संस्थानों के जीवन के साथ खिलवाड़ करना और इनके काम-काज के साथ तोड़-फोड़ करने वाला दृष्टिकोण देश की तरक्की के लिए सही कैसे मान लिया जाएगा? इस तरह तो कुछ समय बाद इंडियन इंडियन ऑफ साइन्स, विज्ञान और प्रोद्योगिकी मंत्रालय, डिपार्टमेंट ऑफ बायोटेक्नालजी, आईसीएमआर, सीएसआईआर, आईसीएआर, बीएआरसी वगैरह भी बंद कर दिये जाएंगे! उक्त निर्णयों का विरोध भारत के वैज्ञानिक समुदाय ने डट कर किया है जिसकी अगुवाई जादवपुर (बंगाल) स्थित 'ब्रेकथ्रू साइन्स सोसाइटी' ने की है। आश्चर्य है ऐसे मामले संसद में चर्चा का विषय नहीं बनते!

विषय कोई भी हो, खोजकर्ता के एक नवीन आइडिया को समकालीन और बाद के वैज्ञानिकों, चिंतकों ने बढ़ाया, संशोधित और पोषित ही किया है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो अनेक देशों के समाज में समांतर भी चलती है और इसमें ठहराव नहीं है। भारत के आदि और मध्य-कालीन वैज्ञानिकों ने खगोल विज्ञान, गणित, वास्तु-शिल्प, मौसम, आयुर्विज्ञान, एप्लाइड केमिस्ट्री जैसे कपड़ा रंगाई और रंजक, इंजीनीयरिंग, पोषण, खाद्य प्रसंकरण, मानव व्यवहार अध्ययन, खनन और धातु कर्म, वृक्षायुर्वेद, पशु-चिकित्सा, भाषा विज्ञान और व्याकरण के अलावा ललित कलाओं के क्षेत्र में अनेक नए सूत्रों और मौलिक विचारों का प्रतिपादन किया है। अगर इतिहास में निहित पारंपरिक वैश्विक दृष्टि से देखें तो प्राचीन मिस्र और अरब जगत की खोजें, तिब्बत और चीन की लोक एवं पारंपरिक चिकित्सा पद्धति जिसकी जड़ें नालंदा, तक्षशिला और विक्रम शिला जैसे बौद्ध विहारों में ढूंढी जा सकती हैं को भी उपेक्षित नहीं करना चाहिए। इसी तरह विश्व के दूसरे भू-भाग में बहुत से अन्य वैज्ञानिकों ने अपने

तरीके से पुराने आइडियास को 'रिफ़ाईन' किया और नवीन अनुसंधान प्रस्तुत किया। सभी ने अपने समय में थियूरेटिकल और एक्सपेरिमेंटल काम से योगदान दिया वह अमूल्य है। इनमें से जिसे अद्भुत और अर्थात 'फंडामैंटल' माना जाता है वह इतिहास में दर्ज़ हो जाता है। विख्यात पत्रिकाओं 'साइन्स' और 'नेचर' ने अपने अप्रैल और मई के अंकों में इस बारे रिपोर्ट्स और संपादकीय लिख कर चिंता जाहिर की है।